श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

UG-11.24 - पंचम सोपान (अर्थ)

श्रीभगवानुवाच

अथ ते सं(म्)प्रवक्ष्यामि, सां(ङ्)ख्यं(म्) पूर्वैर्विनिश्चितम् ।

यद् विज्ञाय पुमान् सद्यो, जह्याद् वैकल्पिकं(म्) भ्रमम् ॥ 1॥

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं- प्यारे उद्धव! अब मैं तुम्हें सांख्यशास्त्र का निर्णय सुनाता हूँ। प्राचीन काल के बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने इसका निश्चय किया है। जब जीव इसे भलीभाँति समझ लेता है तो वह भेदबुद्धि मूलक सुख-दुःखादिरूप भ्रम का तत्काल त्याग कर देता है।

आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थ, एकमेवाविकल्पितम् ।

यदा विवेकनिपुणा, आदौ कृतयुगेऽयुगे ॥ 2॥

युगों से पूर्व प्रलयकाल में आदिसत्ययुग में और जब कभी मनुष्य विवेक निपुण होते हैं-इन सभी अवस्थाओं में यह सम्पूर्ण दृश्य और दृष्टा, जगत् और जीव विकल्पशून्य किसी प्रकार के भेदभाव से रहित केवल ब्रह्म ही होते हैं।

तन्मायाफलरूपेण, केवलं(न्) निर्विकल्पितम् ।

वाङ्मनोगोचरं(म्) सत्यं (न्), द्विधा समभवद् बृहत्॥ 3॥

इसमें सन्देह नहीं कि ब्रह्म में किसी प्रकार का विकल्प नहीं है, वह केवल-अद्वितीय सत्य है; मन और वाणी की उसमें गति नहीं है। वह ब्रह्म ही मायाऔर उसमें प्रतिबिम्बित जीव के रूप में-दृश्य और दृष्टा के रूप में-दो भागों में विभक्त-सा हो गया।

तयोरेकतरो ह्यर्थः(फ्), प्रकृतिः(स्) सोभयात्मिका ।

ज्ञानं(न्) त्वन्यतमो भावः(फ्), पुरुषः(स्) सोऽभिधीयते ॥ 4॥

उनमें से एक वस्तु को प्रकृति कहते हैं। उसी ने जगत् में कार्य और कारण का रूप धारण किया है। दूसरी वस्तु को, जो ज्ञानस्वरूप है, पुरुष कहते हैं।

तमो रजः(स्) सत्त्वमिति, प्रकृतेरभवन् गुणाः ।

मया प्रक्षोभ्यमाणायाः(फ्), पुरुषानुमतेन च ॥ 5॥

उद्धव जी! मैंने ही जीवों के शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार प्रकृति को क्षुब्ध किया। तब उससे सत्त्व, रज और तम-ये तीन गुण प्रकट हुए।

तेभ्यः(स्) समभवत् सूत्रं(म्), महान् सूत्रेण सं(यँ)युतः।
ततो विकुर्वतो जातोऽ- हं(ङ्)कारो यो विमोहनः ॥ 6॥

उनसे क्रिया-शक्ति प्रधान सूत्र और ज्ञानशक्ति प्रधान महत्तत्त्व प्रकट हुए। वे दोनों परस्पर मिले हुए ही हैं। महत्तत्त्व में विकार होने पर अहंकार व्यक्त हुआ। यह अहंकार ही जीवों को मोह में डालने वाला है।

वैकारिकस्तैजसश्च, तामसश्चेत्यहं(न्) त्रिवृत् ।
तन्मात्रेन्द्रियमनसां(ङ्), कारणं(ञ्) चिदचिन्मयः ॥ 7॥

वह तीन प्रकार का है-सात्त्विक, राजस और तामस। अहंकार पंचतन्मात्रा, इन्द्रिय और मन का कारण है; इसलिये वह जड़-चेतन-उभयात्मक है।

अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे, तामसादिन्द्रियाणि च ।
तैजसाद् देवता आसन्- नेकादश च वैकृतात् ॥ 8॥

तामस अहंकार से पंचतन्मात्राएँ और उनसे पाँच भूतों की उत्पत्ति हुई तथा राजस अहंकार से इन्द्रियाँ और सात्त्विक अहंकार से इन्द्रियों के अधिष्ठाता ग्यारह देवता प्रकट हुए।

मया सं(ञ्)चोदिता भावाः(स्), सर्वे सं(म्)हत्यकारिणः।
अण्डमुत्पादयामासुर्- ममायतनमुत्तमम् ॥ 9॥

ये सभी पदार्थ मेरी प्रेरणा से एकत्र होकर परस्पर मिल गये और इन्होंने यह ब्रह्माण्डरूप अण्ड उत्पन्न किया। यह अण्ड मेरा उत्तम निवास स्थान है।

तस्मिन्नहं(म्) समभव- मण्डे सलिलसं(म्)स्थितौ ।
मम नाभ्यामभूत्पद्मं(वँ), विश्वाख्यं(न्) तत्र चात्मभूः ॥ 10॥

जब वह अण्ड जल में स्थित हो गया, तब मैं नारायणरूप से इसमें विराजमान हो गया। मेरी नाभि से विश्वकमल की उत्पत्ति हुई। उसी पर ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ।

सोऽसृजत्तपसा युक्तो, रजसा मदनुग्रहात् ।
लोकान् सपालान् विश्वात्मा, भूर्भुवः(स्) स्वरिति त्रिधा ॥ 11॥

विश्वसमष्टि के अन्तःकरण ब्रह्मा ने पहले बहुत बड़ी तपस्या की। उसके बाद मेरा कृपा-प्रसाद प्राप्त करके रजोगुण के द्वारा भूः, भुवः, स्वः अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग- इन तीन लोकों की और इनके लोकपालों की रचना की।

देवानामोक आसीत् स्वर्- भूतानां(ञ्) च भुवः(फ्) पदम् ।
मर्त्यादीनां(ञ्) च भूर्लोकः(स्), सिद्धानां(न्) त्रितयात् परम् ॥ 12॥

देवताओं के निवास के लिये स्वर्लोक, भूत-प्रेतादि के लिये भुवर्लोक और मनुष्य आदि के लिये भूर्लोक का निश्चय किया गया। इन तीनों लोकों से ऊपर महर्लोक, तपोलोक आदि सिद्धों के निवास स्थान हुए।

अधोऽसुराणां(न्) नागानां(म्), भूमेरोकोऽसृजत् प्रभुः।

त्रिलोक्यां(ङ्) गतयः(स्) सर्वाः(ख्), कर्मणां(न्) त्रिगुणात्मनाम् ॥ 13॥

सृष्टिकार्य में समर्थ ब्रह्मा जी ने असुर और नागों के लिये पृथ्वी के नीचे अतल, वितल, सुतल आदि सात पाताल बनाये। इन्हीं तीनों लोकों में त्रिगुणात्मक कर्मों के अनुसार विविध गतियाँ प्राप्त होती हैं।

योगस्य तपसश्चैव, न्यासस्य गतयोऽमलाः ।

महर्जनस्तपः(स्) सत्यं(म्), भक्तियोगस्य मद्गतिः ॥ 14॥

योग, तपस्या और संन्यास के द्वरा महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोकरूप उत्तम गति प्राप्त होती है तथा भक्तियोग से मेरा परमधाम मिलता है।

मया कालात्मना धात्रा, कर्मयुक्तमिदं(ञ्) जगत् ।

गुणप्रवाह एतस्मिन्-नुन्मज्जति निमज्जति ॥ 15॥

यह सारा जगत् कर्म और उनके संस्कारों से युक्त है। मैं ही कालरूप से कर्मों के अनुसार उनके फल का विधान करता हूँ। इस गुणप्रवाह में पड़कर जीव कभी डूब जाता है और कभी ऊपर आ जाता है-कभी उसकी अधोगति होती है और कभी उसे पुण्यवश उच्च गति प्राप्त हो जाती है।

अणुर्बृहत् कृशः(स्) स्थूलो, यो यो भावः(फ्) प्रसिध्यति ।

सर्वोऽप्युभयसं(यँ)युक्तः, प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ 16॥

जगत् में छोटे-बड़े, मोटे-पतले-जितने भी पदार्थ बनते हैं, सब प्रकृति और पुरुष दोनों के संयोग से ही सिद्ध होते हैं।

यस्तु यस्यादिरन्तश्च, स वै मध्यं(ञ्) च तस्य सन् ।

विकारो व्यवहारार्थो, यथा तैजसपार्थिवाः ॥ 17॥

जिसके आदि और अन्त में जो है, वही बीच में भी है और वही सत्य है। विकार तो केवल व्यवहार के लिये की हुई कल्पनामात्र है। जैसे कंगन-कुण्डल आदि सोने के विकार और घड़े-सकोरे आदि मिट्टी के विकार पहले सोना या मिट्टी ही थे, बाद में भी सोना या मिट्टी ही रहेंगे। अतः बीच में भी वे सोना या मिट्टी ही हैं।

यदुपादाय पूर्वस्तु, भावो विकुरुतेऽपरम् ।

आदिरन्तो यदा यस्य, तत् सत्यमभिधीयते ॥ 18॥

पूर्ववर्ती कारण भी जिस परम कारण को उपादान बनाकर कार्य-वर्ग की सृष्टि करते हैं, वही उनकी अपेक्षा भी परम सत्य है। तात्पर्य यह कि जब जो जिस किसी भी कार्य के आदि और अन्त में विद्यमान रहता है, वही सत्य है।

प्रकृतिर्ह्यस्योपादान- माधारः(फ्) पुरुषः(फ्) परः ।

सतोऽभिव्यञ्जकः(ख्) कालो, ब्रह्म तत्त्रितयं(न्) त्वहम् ॥ 19॥

इस प्रपंच का उपादान-कारण प्रकृति है, परमात्मा अधिष्ठान है और इसको प्रकट करने वाला काल है। व्यवहार-काल की यह त्रिविधता वस्तुतः ब्रह्म-स्वरूप है और मैं वही शुद्ध ब्रह्म हूँ।

सर्गः(फ्) प्रवर्तते तावत्- पौर्वापर्येण नित्यशः ।

महान् गुणविसर्गार्थः(स्), स्थित्यन्तो यावदीक्षणम् ॥ 20॥

जब तक परमात्मा की ईक्षणशक्ति अपना काम करती रहती है, जब तक उनकी पालन-प्रवृत्ति बनी रहती है, तब तक जीवों के कर्मभोग के लिये कारण-कार्यरूप से अथवा पिता-पुत्रादि के रूप से यह सृष्टि चक्र निरन्तर चलता रहता है।

विराण्मयाऽऽसाद्यमानो, लोककल्पविकल्पकः।

पं(ञ्)चत्वाय विशेषाय, कल्पते भुवनैः(स्) सह ॥ 21॥

यह विराट् ही विविध लोकों की सृष्टि, स्थिति और संहार की लीलाभूमि है। जब मैं कालरूप से इसमें व्याप्त होता हूँ, प्रलय का संकल्प करता हूँ, तब यह भुवनों के साथ विनाशरूप विभाग योग्य हो जाता है।

अन्ने प्रलीयते मर्त्य- मन्नं(न्) धानासु लीयते ।

धाना भूमौ प्रलीयन्ते, भूमिर्गन्धे प्रलीयते ॥ 22॥

उसके लीन होने की प्रक्रिया यह है कि प्राणियों के शरीर अन्न में, अन्न बीज में, बीज भूमि में और भूमि गन्ध-तन्मात्रा में लीन हो जाती है।

अप्सु प्रलीयते गन्ध, आपश्च स्वगुणे रसे ।

लीयते ज्योतिषि रसो, ज्योती रूपे प्रलीयते ॥ 23॥

गन्ध जल में, जल अपने गुण रस में, रस तेज में और तेज रूप में लीन हो जाता है।

रूपं(वँ) वायौ स च स्पर्शे, लीयते सोऽपि चाम्बरे ।

अम्बरं(म्) शब्दतन्मात्र, इन्द्रियाणि स्वयोनिषु ॥ 24॥

रूप वायु में, वायु स्पर्श में, स्पर्श आकाश में तथा आकाश शब्दतन्मात्रा में लीन हो जाता है। इन्द्रियाँ अपने कारण देवताओं में और अन्ततः राजस अहंकार में समा जाती हैं।

योनिर्वैकारिके सौम्य, लीयते मनसीश्वरे ।

शब्दो भूतादिमप्येति, भूतादिर्महति प्रभुः ॥ 25॥

हे सौम्य! राजस अहंकार अपने नियन्ता सात्त्विक अहंकाररूप मन में, शब्दतन्मात्रा पंचभूतों के कारण तामस अहंकारों में और सारे जगत् को मोहित करने में समर्थ त्रिविध अहंकार महत्तत्त्व में लीन हो जाता है।

स लीयते महान् स्वेषु, गुणेसु गुणवत्तमः ।

तेऽव्यक्ते सं(म्)प्रलीयन्ते, तत् काले लीयतेऽव्यये ॥ 26॥

ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति प्रधान महत्तत्त्व अपने कारण गुणों में लीन हो जाता है। गुण अव्यक्त प्रकृति में और प्रकृति अपने प्रेरक अविनाशी काल में लीन हो जाती है।

कालो मायामये जीवे, जीव आत्मनि मय्यजे ।

आत्मा केवल आत्मस्थो, विकल्पापायलक्षणः ॥ 27॥

काल मायामय जीव में और जीव मुझ अजन्मा आत्मा में लीन हो जाता है। आत्मा किसी में लीन नहीं होता, वह उपाधिरहित अपने स्वरूप में ही स्थित रहता है। वह जगत् की सृष्टि और लय का अधिष्ठान एवं अवधि है।

एवमन्वीक्षमाणस्य, कथं(वँ) वैकल्पिको भ्रमः ।

मनसो हृदि तिष्ठेत, व्योम्नीवार्कोदये तमः ॥ 28॥

उद्धव जी! जो इस प्रकार विवेकदृष्टि से देखता है, उसके चित्त में यह प्रपंच का भ्रम हो ही नहीं सकता। यदि कदाचित् उसकी स्फूर्ति हो भी जाये तो वह अधिक काल तक हृदय में ठहर कैसे सकता है? क्या सूर्योदय होने पर भी आकाश में अन्धकार ठहर सकता है।

एष सां(ङ्)ख्याविधिः(फ्) प्रोक्तः(स्), सं(म्) शयग्रन्थिभेदनः।

प्रतिलोमानुलोमाभ्यां(म्), परावरदृशा मया ॥ 29॥

उद्धव जी! मैं कार्य और कारण दोनों का ही साक्षी हूँ। मैंने तुम्हें सृष्टि से प्रलय और प्रलय से सृष्टि तक की सांख्यविधि बतला दी। इससे सन्देह की गाँठ कट जाती है और पुरुष अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्)

सं(म्)हितामेकादशस्कन्धे चतुर्विं(म्)शोऽध्यायः ॥

YouTube Full video link

https://youtu.be/xjiuh0fXsE4